

के. वेंकटचलम

बनाम

ए. स्वामिकन एवं एक अन्य

अप्रैल 26, 1999

[डी.पी. वाधवा और एन. संतोष हेगड़े, न्यायमूर्तिगण]

भारत का संविधान, 1950:

अनुच्छेद 226, 329(बी) 173(सी), 190(3), 191, 192(1) और 193- विधान सभा के लिए चुनाव- प्रत्याशी जो निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची में मतदाता नहीं हैं- उसी नाम के दूसरे व्यक्ति का प्रतिरूपण किया- विधान सभा के लिए निर्वाचित- चुनाव को चुनौती देने वाले प्रतिद्वंद्वी उम्मीदवार द्वारा रिट याचिका- अनुच्छेद 329(बी) के तहत शामिल रोक के मद्देनजर याचिका को पोषणीय नहीं मानते हुए एकल न्यायाधीश द्वारा खारिज- अपील को स्वीकार करते हुए और अपीलकर्ता को विधान सभा के सदस्य के रूप में अयोग्य घोषित करते हुए खंड पीठ - अपील पर, अभिनिर्धारित, उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में न्यायोचित था- चुनाव से पहले हुई अयोग्यता और इसलिए अनुच्छेद 329(बी) के तहत रोक आकर्षित नहीं होती- विधान सभा के सदस्य के रूप में बैठने और मतदान करने के लिए अपीलकर्ता पर लगाया गया जुर्माना- लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951- धारा 81 और 100।

अनुच्छेद 226- उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार- दायरा और सीमा।

तमिलनाडु में विधान सभा के आम चुनाव में अपीलकर्ता और उत्तरदाता दोनों ने चुनाव लड़ा। अपीलकर्ता को निर्वाचित घोषित किया गया। चुनाव के बाद, पूरी मतदाता सूची की जांच करते समय, उत्तरदाता ने पाया कि अपीलकर्ता उक्त निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची में मतदाता

नहीं था और मतदाता सूची में उसी नाम के किसी अन्य व्यक्ति का प्रतिरूपण किया था। इस प्रकार अपीलकर्ता के पास लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 5 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 173 के खंड (सी) के तहत विधान सभा के सदस्य के रूप में बैठने के लिए बुनियादी योग्यता का अभाव था। उत्तरदाता ने एक वर्ष बीत जाने के बाद संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत यह घोषणा करने के लिए एक याचिका दायर की कि अपीलकर्ता विधान सभा का सदस्य होने के योग्य नहीं था। उच्च न्यायालय के एक एकल न्यायाधीश ने संविधान के अनुच्छेद 329(बी) में निहित रोक के मद्देनजर इस आधार पर याचिका खारिज कर दी कि यह संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत पोषणीय नहीं थी। हालांकि, अपील पर, उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने माना कि अपीलकर्ता विधान सभा के सदस्य के रूप में बैठने के योग्य नहीं था क्योंकि उसके पास बुनियादी योग्यता नहीं थी। व्यथित होकर, अपीलकर्ता ने वर्तमान अपील प्रस्तुत की है।

अपीलकर्ता का तर्क यह था कि संविधान के अनुच्छेद 329(बी) के प्रावधानों के मद्देनजर, उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता था और यह कि चुनाव में हारने वाले उम्मीदवार के कहने पर एक वर्ष बीत जाने के बाद *अधिकार-पृच्छा* की रिट जारी नहीं की जा सकती थी।

उत्तरदाता का तर्क यह था कि चूंकि अपीलकर्ता के पास विधान सभा के लिए चुने जाने के लिए संविधान के तहत बुनियादी और मौलिक योग्यता का अभाव था, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता था कि चुनाव की घोषणा के बाद अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका पोषणीय नहीं थी।

अपील को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया: 1. उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका पर विचार करने में अपने क्षेत्राधिकार का सही ढंग से प्रयोग किया और घोषणा की कि

अपीलकर्ता तमिलनाडु विधान सभा में बैठने का हकदार नहीं था और परिणामस्वरूप उसे विधान सभा के सदस्य के रूप में कार्य करने से रोकने का आदेश दिया। [879-बी]

2. विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची में मतदाता न होने के कारण अपीलकर्ता के पास अधिनियम की धारा 5 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 173 के खंड (सी) के तहत बुनियादी योग्यता का अभाव था, जिसमें यह अनिवार्य है कि विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से चुने जाने वाले व्यक्ति को उस निर्वाचन क्षेत्र का मतदाता होना चाहिए। इसलिए, वह विधान सभा के सदस्य के रूप में नहीं चुना जा सकता था। अपीलकर्ता ने अपने नामांकन प्रपत्र में इस तथ्य का लाभ उठाते हुए एक व्यक्ति का प्रतिरूपण किया कि उस व्यक्ति का पहला नाम उसके नाम जैसा है। अपीलकर्ता आपराधिक रूप से भी उत्तरदायी होगा क्योंकि उसने अपना प्रतिरूपण करते हुए शपथ पत्र पर अपना नामांकन दाखिल किया था। यदि ऐसी परिस्थितियों में उसे विधान सभा में बैठने और मतदान करना जारी रखने की अनुमति दी जाती है, तो उसका कृत्य संविधान के साथ धोखाधड़ी होगा। अधिनियम की धारा 81 के तहत चुनाव याचिका दायर करके अपीलकर्ता के चुनाव को चुनौती दी जा सकती थी जो नहीं किया गया था। धारा 81 के तहत चुनाव याचिका विजयी उम्मीदवार के चुनाव की तिथि से चालीस दिनों के भीतर दायर की जानी थी। अधिनियम के तहत सीमा के लिए कोई प्रावधान नहीं है। यह स्थापित होने पर भी चुनाव को चुनौती देने का कोई उपाय नहीं था कि अपीलकर्ता के पास विधान सभा के लिए चुने जाने की योग्यता नहीं थी। परिस्थितियों में उच्च न्यायालय यह घोषित करते हुए संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकता है कि अपीलकर्ता विधान सभा का सदस्य होने के योग्य नहीं है। [874-डी-ई; 877-जी-एच; 878-ए-डी]

3. संविधान का अनुच्छेद 226 यथासंभव व्यापक शब्दों में व्यक्त किया गया है और जब तक उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में कोई स्पष्ट रोक न हो, संविधान के अनुच्छेद 226 के

तहत उसकी शक्तियों का प्रयोग तब किया जा सकता है जब कोई ऐसा कार्य हो जो विधि के किसी भी प्रावधान के विरुद्ध हो या संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करता हो और जब उचित राहत के लिए अधिनियम के प्रावधानों का सहारा न लिया जा सके। वर्तमान मामले में अनुच्छेद 192 के तहत कार्रवाई नहीं की जा सकती थी क्योंकि अपीलकर्ता ने जो अयोग्यता प्राप्त की थी वह उसके चुनाव से पहले की थी। वर्तमान जैसी परिस्थितियों में, अनुच्छेद 329(बी) की रोक तब लागू नहीं होगी जब मामला अनुच्छेद 191 और 193 के अंतर्गत आता है और चुनाव की पूरी प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। [878-जी]

इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया बनाम साका वेंकट राव, एआईआर (1953) एससी 210, पर अवलंबन।

एन.पी. पोन्नुस्वामी बनाम रिटर्निंग ऑफिसर, नमक्कल निर्वाचन क्षेत्र, नमक्कल, सेलम जिला और अन्य, एआईआर (1952) एससी 64; दुर्गा शंकर मेहता बनाम रघुराज सिंह और अन्य, एआईआर (1954) एससी 520; वृंदाबन नायक बनाम इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया, एआईआर (1965) एससी 1892; मोहिंदर सिंह गिल और एक अन्य बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त, नई दिल्ली और अन्य, एआईआर (1978) एससी 851; कृष्ण वल्लभ प्रसाद सिंह बनाम अनुमंडल अधिकारी, हिलसा-सह-रिटर्निंग ऑफिसर और अन्य, एआईआर (1985) एससी 1746 और इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया बनाम शिवाजी और अन्य, एआईआर (1988) एससी 61, अप्रयोज्य निर्णीत।

4. अपीलकर्ता जुर्माने का भागी है क्योंकि वह जानता है कि वह विधान सभा की सदस्यता के लिए योग्य नहीं है, फिर भी वह एक सदस्य के रूप में बैठता है और मतदान करता है। वह प्रत्येक दिन के संबंध में पांच सौ रुपये के जुर्माने का भागी है जिस दिन वह इस तरह से बैठता है या मतदान करता है और वह जुर्माना राज्य को देय ऋण के रूप में वसूल

किया जा सकता है। अधिनियम के तहत कोई न्यायनिर्णयन नहीं हुआ है और संविधान का कोई अन्य प्रावधान नहीं है कि अपीलकर्ता द्वारा इस प्रकार लगाए गए जुर्माने को राज्य को देय ऋण के रूप में कैसे वसूल किया जाना है। उत्तरदाता संख्या 2 राज्य सरकार को सूचित करेगा कि अपीलकर्ता विधान सभा के सदस्य के रूप में कितने दिन बैठा और राज्य सरकार के लिए यह होगा कि वह संविधान के अनुच्छेद 193 के संदर्भ में अपीलकर्ता से जुर्माना वसूल करे। [878-बी; 879-डी]

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1986 की दीवानी अपील संख्या 1719।

1985 का डब्ल्यू.ए. संख्या 1157 में मद्रास उच्च न्यायालय के दिनांक 23.4.86 के निर्णय और आदेश से।

अपीलकर्ता के लिए विनीत कुमार के लिए त्रिपुरारी रे।

उत्तरदाता संख्या 1 के लिए वी. बालकृष्णमूर्ति और पी. कविलन (वी. बालचंद्रन) (एनपी)।

उत्तरदाता संख्या 2 के लिए ए. मरियारपुथम।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा सुनाया गया

डी.पी. वाधवा, न्यायमूर्ति। मद्रास उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने रिट अपील में 23 अप्रैल, 1986 के अपने निर्णय द्वारा घोषित किया कि के. वेंकटचलम, जो हमारे समक्ष अपीलकर्ता है, तमिलनाडु में विधान सभा के सदस्य के रूप में बैठने के योग्य नहीं था क्योंकि उसके पास लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (संक्षेप में "अधिनियम") की धारा 5 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 173 के खंड (सी) में निर्धारित बुनियादी योग्यताओं का अभाव था। खंड पीठ ने माना कि अपीलकर्ता लालगुडी विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र के लिए मतदाता नहीं था और इसलिए, उसके पास उस निर्वाचन क्षेत्र से चुने जाने के लिए आवश्यक योग्यता नहीं थी। उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए

आक्षेपित निर्णय पारित किया। हालांकि, उच्च न्यायालय के एक एकल न्यायाधीश ने पहले अपीलकर्ता के चुनाव को चुनौती देने वाली रिट याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया था कि संविधान के अनुच्छेद 329 के खंड (बी) में निहित रोक के मद्देनजर यह संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत पोषणीय नहीं थी।

तमिलनाडु में विधान सभा के आम चुनाव दिसंबर, 1984 में हुए थे और अपीलकर्ता वेंकटचलम तथा उत्तरदाता स्वामिकन दोनों उम्मीदवार थे। घोषित परिणाम में वेंकटचलम निर्वाचित हुए। वेंकटचलम के चुनाव की तिथि से एक वर्ष बाद, स्वामिकन द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक घोषणा के लिए याचिका दायर की गई थी कि वेंकटचलम लालगुडी विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले तमिलनाडु विधान सभा के सदस्य होने के योग्य नहीं थे क्योंकि वे विचाराधीन आम चुनावों के लिए लालगुडी विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची में मतदाता नहीं थे। उन्होंने वैकल्पिक रूप से *अधिकार-पृच्छा* की रिट के लिए भी प्रार्थना की, जिसमें वेंकटचलम को यह दिखाने का निर्देश दिया गया कि वे लालगुडी विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य के रूप में तमिलनाडु विधान सभा में किस अधिकार से सीट पर काबिज हैं। स्वामिकन ने अधिनियम की धारा 81 के तहत वेंकटचलम के चुनाव पर सवाल उठाते हुए कोई याचिका प्रस्तुत नहीं की। उन्होंने आरोप लगाया कि वेंकटचलम ने लालगुडी विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची में उसी नाम के किसी अन्य व्यक्ति का प्रतिरूपण किया और इस प्रकार एक झूठा शपथ पत्र दिया कि वह उस निर्वाचन क्षेत्र का मतदाता था। यह आरोप लगाया गया था कि वेंकटचलम का कृत्य धोखाधड़ी और एक आपराधिक कृत्य था, जिसका पता स्वामिकन को तब चला जब उन्होंने लालगुडी विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र की पूरी मतदाता सूची की जांच की।

3 दिसंबर, 1985 के निर्णय द्वारा उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को यह मानते हुए खारिज कर दिया कि जब अधिनियम के तहत उपाय उपलब्ध था तो संविधान का अनुच्छेद 329(बी) एक पूर्ण रोक था। व्यथित स्वामिकन ने रिट अपील दायर की जिसे, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने 23 अप्रैल, 1986 के निर्णय द्वारा स्वीकार कर लिया। उच्च न्यायालय ने माना कि वह संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए यह घोषित करने में शक्तिहीन नहीं था कि वेंकटचलम का चुनाव अवैध था क्योंकि उसके पास बुनियादी संवैधानिक और वैधानिक योग्यताएं नहीं थीं। व्यथित वेंकटचलम ने इस न्यायालय में अपील करने की अनुमति प्राप्त की। उनका मुख्य तर्क यह रहा है कि संविधान के अनुच्छेद 329(बी) के प्रावधानों के संबंध में, उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता था और आगे यह कि चुनाव में हारने वाले उम्मीदवार के कहने पर एक वर्ष बीत जाने के बाद *अधिकार-पृच्छा* की रिट जारी नहीं की जा सकती थी।

इस बात पर कोई विवाद नहीं है और वास्तव में उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष को कोई चुनौती नहीं है कि वेंकटचलम दिसंबर, 1984 के आम चुनावों के लिए लालगुडी विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची में मतदाता नहीं थे और उन्होंने किसी अन्य व्यक्ति के नाम की समानता का उपयोग करते हुए उस निर्वाचन क्षेत्र के मतदाता होने का प्रतिनिधित्व एक खुले और धोखाधड़ीपूर्ण तरीके से किया। अपीलकर्ता की ओर से यह कृत्य देश के कानूनों के तहत उसे आपराधिक अभियोजन का सामना करने के लिए अच्छी तरह से उत्तरदायी बना सकता है। उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता के खिलाफ घोषणा देते हुए व्यापक मुद्दों पर विचार किया। इसने संविधान के अनुच्छेद 193 के प्रभाव पर विचार किया जो तब बैठने और मतदान करने के लिए जुर्माना प्रदान करता है जब कोई व्यक्ति विधान सभा का सदस्य होने के योग्य नहीं होता है।

प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार करने से पहले यह उचित हो सकता है कि संविधान और अधिनियम में निहित प्रासंगिक प्रावधानों को निर्धारित किया जाए।

जैसा कि अधिनियम की धारा 2(ई) में परिभाषित है, किसी निर्वाचन क्षेत्र के संबंध में "मतदाता" का अर्थ ऐसे व्यक्ति से है जिसका नाम तत्समय प्रवृत्त उस निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची में दर्ज है और जो लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 (1950 का 43) की धारा 16 में उल्लिखित किसी भी अयोग्यता के अधीन नहीं है। अनुच्छेद 173 राज्य विधानमंडल की सदस्यता के लिए योग्यता प्रदान करता है। यह इस प्रकार है:-

"173. राज्य विधानमंडल की सदस्यता के लिए योग्यता। कोई व्यक्ति किसी राज्य के विधानमंडल में किसी स्थान को भरने के लिए चुने जाने के योग्य नहीं होगा जब तक कि वह-

(ए) भारत का नागरिक न हो, और चुनाव आयोग द्वारा उस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्रपत्र के अनुसार शपथ न ले या प्रतिज्ञान न करे;

(बी) विधान सभा में किसी स्थान की स्थिति में कम से कम पच्चीस वर्ष की आयु का न हो और विधान परिषद में किसी स्थान की स्थिति में कम से कम तीस वर्ष की आयु का न हो; और

(सी) ऐसी अन्य योग्यताएं न रखता हो जो संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन उस निमित्त विहित की जाएं।"

अनुच्छेद 190 के खंड (3) के तहत एक सदस्य विधानमंडल में अपना स्थान रिक्त कर देता है यदि वह अनुच्छेद 191 के खंड (1) और (2) के तहत किसी अयोग्यता के अधीन हो जाता है।

अनुच्छेद 191 सदस्यता की अयोग्यता प्रदान करता है और इसके साथ प्रासंगिक अनुच्छेद 192 और 193 हैं, जिन्हें नीचे भी निर्धारित किया जा सकता है:-

"190. स्थानों का रिक्त होना।-(1).....

(2)

(3) यदि राज्य विधानमंडल के किसी सदन का सदस्य-

(ए) अनुच्छेद 191 के खंड (1) या खंड (2) में उल्लिखित किसी अयोग्यता के अधीन हो जाता है; या

(बी) अध्यक्ष या सभापति, जैसी भी स्थिति हो, को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा अपने स्थान से त्यागपत्र दे देता है और उसका त्यागपत्र अध्यक्ष या सभापति, जैसी भी स्थिति हो, द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है,

तो उसका स्थान तदनुसार रिक्त हो जाएगा:

बशर्ते कि उप-खंड (बी) में निर्दिष्ट किसी त्यागपत्र की स्थिति में, यदि प्राप्त जानकारी या अन्यथा से और ऐसी जांच करने के बाद जैसा वह उचित समझे, अध्यक्ष या सभापति, जैसी भी स्थिति हो, संतुष्ट है कि ऐसा त्यागपत्र स्वैच्छिक या वास्तविक नहीं है, तो वह ऐसा त्यागपत्र स्वीकार नहीं करेगा।"

"191. सदस्यता के लिए अयोग्यता- (1) कोई व्यक्ति किसी राज्य की विधान सभा या विधान परिषद का सदस्य चुने जाने के लिए और सदस्य होने के लिए अयोग्य होगा-

(ए) यदि वह भारत सरकार या पहली अनुसूची में निर्दिष्ट किसी राज्य सरकार के अधीन कोई लाभ का पद धारण करता है, उस पद को छोड़कर जिसे राज्य विधानमंडल ने विधि द्वारा उसके धारकों को अयोग्य घोषित नहीं किया है;

(बी) यदि वह विकृत चित्त का है और सक्षम न्यायालय द्वारा ऐसा घोषित है;

(सी) यदि वह एक अनुन्मोचित दिवालिया है;

(डी) यदि वह भारत का नागरिक नहीं है, अथवा उसने स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता ग्रहण कर ली है, अथवा वह किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा या निष्ठानुगमन की किसी स्वीकृति के अधीन है;

(ई) यदि वह संसद द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन इस प्रकार अयोग्य घोषित किया गया है।"

स्पष्टीकरण:- इस खंड के प्रयोजन के लिए, किसी व्यक्ति को भारत सरकार या पहली अनुसूची में निर्दिष्ट किसी राज्य की सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करने वाला केवल इस कारण से नहीं माना जाएगा कि वह संघ या ऐसे राज्य के लिए मंत्री है।

(2) कोई व्यक्ति किसी राज्य की विधान सभा या विधान परिषद का सदस्य होने के लिए अयोग्य होगा यदि वह दसवीं अनुसूची के तहत इस प्रकार अयोग्य है।"

"192. सदस्यों की अयोग्यताओं के रूप में प्रश्नों पर निर्णय.-(1) यदि कोई प्रश्न उठता है कि क्या राज्य विधानमंडल के किसी सदन का सदस्य अनुच्छेद 191 के खंड (1) में उल्लिखित किसी अयोग्यता के अधीन हो गया है, तो प्रश्न राज्यपाल के निर्णय के लिए भेजा जाएगा और उनका निर्णय अंतिम होगा।

(2) किसी ऐसे प्रश्न पर कोई निर्णय देने से पहले, राज्यपाल चुनाव आयोग की राय प्राप्त करेगा और ऐसी राय के अनुसार कार्य करेगा।"

"193. अनुच्छेद 188 के तहत शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने से पहले या योग्य न होने पर या अयोग्य होने पर बैठने और मतदान करने के लिए जुर्माना.- यदि कोई व्यक्ति राज्य की विधान सभा या विधान परिषद के सदस्य के रूप में अनुच्छेद 188 की

आवश्यकताओं का अनुपालन करने से पहले बैठता है या मतदान करता है, या जब वह जानता है कि वह उसके लिए योग्य नहीं है या कि वह उसकी सदस्यता के लिए अयोग्य है, या कि वह संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि के प्रावधानों द्वारा ऐसा करने से प्रतिबंधित है, तो वह प्रत्येक उस दिन के संबंध में जिस दिन वह इस तरह बैठता या मतदान करता है, पांच सौ रुपये के जुर्माने का भागी होगा जिसे राज्य को देय ऋण के रूप में वसूल किया जाएगा।"

अधिनियम की धारा 5 फिर संविधान के अनुच्छेद 173 के खंड (सी) के मद्देनजर विधान सभा की सदस्यता के लिए आगे की योग्यताएं प्रदान करती है। अधिनियम की धारा 5 इस प्रकार है:-

"5. विधान सभा की सदस्यता के लिए योग्यताएं.- कोई व्यक्ति किसी राज्य की विधान सभा में कोई स्थान भरने के लिए चुने जाने के योग्य नहीं होगा जब तक कि-

(ए) उस राज्य की अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित सीट के मामले में, वह उन जातियों या जनजातियों में से किसी का सदस्य न हो, जैसा भी मामला हो, और उस राज्य के किसी भी विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र का मतदाता न हो;

(बी) असम के किसी स्वायत्त जिले के लिए आरक्षित सीट के मामले में, वह किसी भी स्वायत्त जिले की अनुसूचित जनजाति का सदस्य न हो और उस विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र का मतदाता न हो जिसमें ऐसी सीट या कोई अन्य सीट उस जिले के लिए आरक्षित है; और

(सी) किसी भी अन्य सीट के मामले में, वह उस राज्य के किसी भी विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र के लिए एक मतदाता न हो:

बशर्ते कि अनुच्छेद 371-ए के खंड (2) में संदर्भित अवधि के लिए, कोई व्यक्ति नागालैंड की विधान सभा में ट्यूनसांग जिले को आवंटित किसी भी सीट को भरने के लिए चुने जाने के योग्य नहीं होगा जब तक कि वह उस अनुच्छेद में संदर्भित क्षेत्रीय परिषद का सदस्य न हो।"

फिर से यह अधिनियम की धारा 5 का खंड (सी) है, जो हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है। अधिनियम का अध्याय III संसद और राज्य विधानमंडल की सदस्यता के लिए अयोग्यता निर्धारित करता है। इस अध्याय की धारा 7 के खंड (बी) के तहत "अयोग्य" शब्द का अर्थ संसद के किसी भी सदन या राज्य की विधान सभा या विधान परिषद के सदस्य के रूप में चुने जाने और होने के लिए अयोग्य है। अधिनियम की धारा 8 के तहत उसमें उल्लिखित विभिन्न धाराओं के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराए गए व्यक्ति को ऐसी दोषसिद्धि की दिनांक से एक निश्चित अवधि के लिए अयोग्य घोषित किया जाएगा। यदि कोई व्यक्ति अधिनियम की धारा 8 ए के तहत किसी आदेश द्वारा भ्रष्ट आचरण का दोषी पाया जाता है तो उसे फिर से एक निश्चित अवधि के लिए अयोग्य घोषित किया जाता है। धाराएं 9, 9 ए, 10 और 10 ए भी विभिन्न अयोग्यताएं प्रदान करती हैं। धारा 11 के तहत, चुनाव आयोग दर्ज किए जाने वाले कारणों से, धारा 8 ए को छोड़कर इस अध्याय के तहत किसी भी अयोग्यता को दूर कर सकता है।

अधिनियम का भाग VI चुनाव संबंधी विवादों का प्रावधान करता है। इस भाग के अंतर्गत आने वाली धारा 79 के खंड (डी) के तहत 'निर्वाचन अधिकार' का अर्थ किसी व्यक्ति के उम्मीदवार के रूप में खड़े होने या न खड़े होने, या वापस लेने या वापस न लेने, या चुनाव में मतदान करने या मतदान से दूर रहने के अधिकार से है।

अधिनियम की धारा 80 के तहत भाग VI के प्रावधानों के अनुसार प्रस्तुत चुनाव याचिका के अलावा किसी भी चुनाव पर सवाल नहीं उठाया जाएगा। चुनाव याचिका अधिनियम की धारा 81 के तहत किसी चुनाव पर अधिनियम की धारा 100 या धारा 101 में निर्दिष्ट एक या अधिक आधारों पर सवाल उठाते हुए प्रस्तुत की जा सकती है और वह याचिका ऐसे चुनाव में किसी भी उम्मीदवार या किसी भी मतदाता द्वारा निर्वाचित घोषित उम्मीदवार के चुनाव की दिनांक से 45 दिनों के भीतर दायर की जा सकती है। धारा 101 वे आधार देती है जिन पर विजयी उम्मीदवार के अलावा अन्य उम्मीदवारों को निर्वाचित घोषित किया जा सकता है। धारा 123 भ्रष्ट आचरणों को परिभाषित करती है। ये दोनों धाराएं 101 और 123 अधिनियम के हमारे उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक नहीं हैं। धाराएं 81 और 100 (प्रासंगिक भाग में) इस प्रकार हैं:-

"81. याचिकाओं का प्रस्तुतीकरण.- (1) किसी चुनाव पर सवाल उठाने वाली चुनाव याचिका धारा 100 की उप-धारा (1) और धारा 101 में निर्दिष्ट एक या अधिक आधारों पर उच्च न्यायालय में ऐसे चुनाव के किसी भी उम्मीदवार या किसी मतदाता द्वारा विजयी उम्मीदवार के चुनाव की दिनांक से पैंतालीस दिनों के भीतर, लेकिन उससे पहले नहीं, या यदि चुनाव में एक से अधिक विजयी उम्मीदवार हैं और उनके चुनाव की दिनांक भिन्न हैं, तो उन दोनों दिनांकों में से जो बाद की हो, प्रस्तुत की जा सकती है।

स्पष्टीकरण.- इस उप-धारा में, 'मतदाता' का अर्थ उस व्यक्ति से है जो उस चुनाव में मतदान करने का हकदार था जिससे चुनाव याचिका संबंधित है, चाहे उसने ऐसे चुनाव में मतदान किया हो या नहीं।

(2) [1966 के अधिनियम 47 द्वारा विलुप्त]

(3) प्रत्येक चुनाव याचिका के साथ उसकी उतनी प्रतियां संलग्न होंगी जितने याचिका में उत्तरदाता उल्लिखित हैं, और ऐसी प्रत्येक प्रति याचिकाकर्ता द्वारा अपने स्वयं के हस्ताक्षर के तहत याचिका की सत्य प्रति होने के लिए अनुप्रमाणित की जाएगी।"

"100. चुनाव को शून्य घोषित करने के आधार.- (1) उप-धारा (2) के प्रावधानों के अधीन यदि उच्च न्यायालय की राय है कि-

(ए) उसके चुनाव की तिथि पर विजयी उम्मीदवार संविधान, या इस अधिनियम या संघ राज्य क्षेत्र शासन अधिनियम, 1963 (1963 का 20) के तहत सीट भरने के लिए चुने जाने के योग्य नहीं था, या अयोग्य था: या

(बी) विजयी उम्मीदवार या उसके चुनाव अभिकर्ता द्वारा या विजयी उम्मीदवार या उसके चुनाव अभिकर्ता की सहमति से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कोई भ्रष्ट आचरण किया गया है; या

(सी) कोई नामांकन अनुचित रूप से अस्वीकृत कर दिया गया है; या

(डी) चुनाव का परिणाम, जहाँ तक यह विजयी उम्मीदवार से संबंधित है, भौतिक रूप से प्रभावित हुआ है-

(i) किसी नामांकन की अनुचित स्वीकृति द्वारा, या

(ii) विजयी उम्मीदवार के हित में उसके चुनाव अभिकर्ता के अलावा किसी अन्य अभिकर्ता द्वारा किए गए किसी भ्रष्ट आचरण द्वारा, या

(iii) किसी मत की अनुचित प्राप्ति, इनकार या अस्वीकृति या किसी ऐसे मत की प्राप्ति जो शून्य है, द्वारा, या

(iv) संविधान या इस अधिनियम या इस अधिनियम के तहत बनाए गए किसी भी नियम या आदेश के प्रावधानों के किसी भी गैर-अनुपालन द्वारा,

उच्च न्यायालय विजयी उम्मीदवार के चुनाव को शून्य घोषित करेगा।"

संविधान का भाग XV चुनावों से संबंधित है। अनुच्छेद 329 का खंड (बी), जो चुनाव मामलों में न्यायालय के हस्तक्षेप पर रोक लगाता है, इस प्रकार है:-

"329. निर्वाचन संबंधी मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप का वर्जन.- इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी

(ए)

(बी) संसद के किसी सदन या किसी राज्य के विधानमंडल के सदन या किसी सदन के लिए कोई चुनाव किसी ऐसी चुनाव याचिका के अलावा जो ऐसे प्राधिकारी को और ऐसी रीति से प्रस्तुत की गई हो जो समुचित विधानमंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा या उसके अधीन उपबंधित की जाए, प्रश्नगत नहीं किया जाएगा।"

शपथ जो एक उम्मीदवार अपने चुनाव से पहले और बाद में लेता है, संविधान की तीसरी अनुसूची में दी गई हैं और ये हैं:-

"ए. राज्य विधानमंडल के चुनाव के लिए उम्मीदवार द्वारा ली जाने वाली शपथ या प्रतिज्ञान का प्रपत्र:

"मैं, ए.बी; विधान सभा (या विधान परिषद) में एक सीट भरने के लिए एक उम्मीदवार के रूप में नामांकित होने के नाते, ईश्वर के नाम पर शपथ लेता हूं/सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा और मैं भारत की संप्रभुता और अखंडता को अक्षुण्ण रखूंगा।"

"बी. राज्य विधानमंडल के सदस्य द्वारा ली जाने वाली शपथ या प्रतिज्ञान का प्रपत्र:

"मैं, ए.बी., विधान सभा (या विधान परिषद) का सदस्य निर्वाचित (या नामांकित) होने के नाते, ईश्वर के नाम पर शपथ लेता हूं/सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा, मैं भारत की संप्रभुता और अखंडता को अक्षुण्ण रखूंगा और जिस कर्तव्य को मैं ग्रहण करने वाला हूं उसका श्रद्धापूर्वक निर्वहन करूंगा।"

अपने इस तर्क के समर्थन में कि अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार वर्जित था, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री त्रिपुरारी रे ने इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का संदर्भ दिया, जिनमें एन.पी. पोन्नुस्वामी बनाम रिटर्निंग ऑफिसर, नमक्कल निर्वाचन क्षेत्र, नमक्कल, सेलम जिला और अन्य, एआईआर (1952) एससी 64; दुर्गा शंकर मेहता बनाम रघुराज सिंह और अन्य, एआईआर (1954) एससी 520; वृंदाबन नायक बनाम इलेक्शन कामना ऑफ इंडिया, एआईआर (1965) एससी 1892; मोहिंदर सिंह गिल और एक अन्य बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त, नई दिल्ली और अन्य, एआईआर (1978) एससी 851; कृष्ण वल्लभ प्रसाद सिंह बनाम अनुमंडल अधिकारी, हिलसा-सह-रिटर्निंग ऑफिसर और अन्य, एआईआर (1985) एससी 1746 तथा इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया बनाम शिवाजी और अन्य, एआईआर (1988) एससी 61 शामिल हैं।

एन.पी. पोन्नुस्वामी के मामले एआईआर (1952) एससी 64 में, अपीलकर्ता उन व्यक्तियों में से एक था जिसने सेलम जिले के एक निर्वाचन क्षेत्र से मद्रास विधान सभा के चुनाव के लिए अपना नामांकन पत्र दाखिल किया था। निर्वाचन अधिकारी ने कुछ आधारों पर उसका नामांकन पत्र अस्वीकार कर दिया। इसके बाद अपीलकर्ता ने निर्वाचन अधिकारी के आदेशों को खंडित करने के लिए उत्प्रेषण की रिट की मांग करते हुए और प्रकाशित होने वाली वैध नामांकनों की सूची में अपना नाम शामिल करने के निर्देश के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च

न्यायालय में रिट याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने इस आधार पर याचिका खारिज कर दी कि संविधान के अनुच्छेद 329(बी) के प्रावधानों के कारण उसके पास निर्वाचन अधिकारी के आदेशों में हस्तक्षेप करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। अपीलकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष तर्क दिया कि उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया दृष्टिकोण सही नहीं था और उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार संविधान के अनुच्छेद 329(बी) से प्रभावित नहीं हुआ था। इस न्यायालय ने कहा कि अधिनियम के प्रावधानों से यह एक उचित निष्कर्ष होगा कि अधिनियम में केवल एक ही उपाय प्रदान किया गया था, वह उपाय चुनाव समाप्त होने के बाद प्रस्तुत की जाने वाली चुनाव याचिका थी, और किसी भी मध्यवर्ती चरण में कोई उपाय प्रदान नहीं किया गया था। इस न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया कि चूंकि अधिनियम संविधान के प्रावधानों के अधीन अधिनियमित किया गया था, इसलिए यह संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट जारी करने के उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को वर्जित नहीं कर सकता था। न्यायालय ने कहा कि यह तर्क, हालांकि, संविधान के अनुच्छेद 329(बी) के साथ अधिनियम को पढ़ने से पूरी तरह से बंद हो जाता है और यह ध्यान दिया जाएगा कि उस अनुच्छेद में और अधिनियम की धारा 80 में प्रयुक्त भाषा लगभग समान थी, केवल इस अंतर के साथ कि अनुच्छेद से पहले 'इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी' शब्द आते हैं। न्यायालय ने तब कहा कि वे शब्द उच्च न्यायालय के किसी भी ऐसे मामले से निपटने के क्षेत्राधिकार को अपवर्जित करने के लिए काफी उपयुक्त थे, जो चुनाव प्रगति पर होने के दौरान उत्पन्न हो सकता है। यह न्यायालय निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचा :-

"(1) लोकतांत्रिक देशों में विधानमंडलों को जिन महत्वपूर्ण कार्यों का संपादन करना होता है, उनके संबंध में हमेशा यह पहली प्राथमिकता माना गया है कि चुनाव समय-सारणी के अनुसार जल्द से जल्द संपन्न होने चाहिए और चुनावों से उत्पन्न होने

वाले सभी विवादास्पद मामलों और सभी विवादों को चुनाव समाप्त होने तक के लिए स्थगित कर दिया जाना चाहिए, ताकि चुनाव की कार्यवाही अनुचित रूप से बाधित या लंबी न हो।

(2) इस सिद्धांत के अनुरूप, इस देश के साथ-साथ इंग्लैंड में भी चुनाव कानून की योजना यह है कि किसी भी ऐसी बात को महत्व नहीं दिया जाना चाहिए जो "चुनाव" को प्रभावित नहीं करती है, और यदि चुनाव प्रगति पर होने के दौरान कोई अनियमितताएं की जाती हैं और वे उस श्रेणी या वर्ग से संबंधित हैं, जिसके तहत चुनावों को नियंत्रित करने वाले कानून के अनुसार, "चुनाव" को दूषित करने का प्रभाव होगा और प्रभावित व्यक्ति को उस पर सवाल उठाने में सक्षम बनाएगी, तो उन्हें एक चुनाव याचिका के माध्यम से एक विशेष न्यायाधिकरण के समक्ष लाया जाना चाहिए, न कि चुनाव प्रगति पर होने के दौरान किसी न्यायालय के समक्ष विवाद का विषय बनाया जाना चाहिए।"

अंत में इस न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 329(बी) का मुख्य उद्देश्य निर्वाचन संबंधी मामलों में सभी न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को अपवर्जित या बाहर करना और एकमात्र तरीका निर्धारित करना था जिससे किसी चुनाव को चुनौती दी जा सके।

दुर्गा शंकर मेहता के मामले एआईआर (1954) एससी 520 में, मध्य प्रदेश का एक निश्चित विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र एक दोहरा सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र था, जो सामान्य और आरक्षित था। रघुराज सिंह, जो सामान्य सीट के उम्मीदवार थे और चुनाव हार गए थे, ने चुनाव न्यायाधिकरण के समक्ष एक याचिका दायर कर सामान्य और आरक्षित दोनों श्रेणियों के उम्मीदवारों के चुनाव को इस आधार पर चुनौती दी कि सफल आरक्षित निर्वाचन क्षेत्र का उम्मीदवार, जिसे उक्त निर्वाचन क्षेत्र में आरक्षित सीट पर निर्वाचित घोषित किया गया था, हर

समय 25 वर्ष से कम आयु का था और परिणामस्वरूप संविधान के अनुच्छेद 173 के तहत राज्य की विधान सभा में सीट भरने के लिए चुने जाने के योग्य नहीं था। चुनाव न्यायाधिकरण ने सामान्य और आरक्षित दोनों उम्मीदवारों के चुनाव को अपास्त कर दिया। सामान्य सीट के उम्मीदवार द्वारा की गई अपील पर इस न्यायालय ने उसके संबंध में चुनाव न्यायाधिकरण के आदेश को अपास्त कर दिया लेकिन आरक्षित सीट के उम्मीदवार के खिलाफ उसके चुनाव को शून्य मानते हुए आदेश को बरकरार रखा। न्यायालय ने टिप्पणी की :-

"जब कोई व्यक्ति स्वयं संविधान के प्रावधानों के तहत राज्य विधान सभा के सदस्य के रूप में चुने जाने के लिए असमर्थ है, लेकिन फिर भी चुनाव में इस रूप में विजयी हुआ है, तो यह अनुचितता के बिना कहा जा सकता है कि संविधान के प्रावधानों का गैर-अनुपालन हुआ है जिसने चुनाव के परिणाम को भौतिक रूप से प्रभावित किया है। "गैर-अनुपालन" और "गैर-पालन" या "उल्लंघन" के बीच कोई तात्त्विक अंतर नहीं है और उप-धारा (2) के खंड (सी) में इस विषय को एक अवशिष्ट प्रावधान के रूप में लिया जा सकता है जो ऐसे मामलों की परिकल्पना करता है जहाँ संविधान के या अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन हुआ है लेकिन जिन्हें खंड के अन्य भागों में विशेष रूप से प्रगणित नहीं किया गया है। जब कोई व्यक्ति सदस्य चुने जाने के योग्य नहीं है, तो इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि चुनाव न्यायाधिकरण को उसके चुनाव को शून्य घोषित करना ही होगा। अधिनियम की धारा 98 के तहत यह उन आदेशों में से एक है जिन्हें देने के लिए चुनाव न्यायाधिकरण सक्षम है। यदि यह कहा जाता है कि अधिनियम की धारा 100 उन आधारों को व्यापक रूप से प्रगणित करती है जिन पर किसी चुनाव को पूरी तरह से या विजयी उम्मीदवार के संबंध में शून्य ठहराया जा सकता है, तो हम सोचते हैं कि यह दृष्टिकोण अपनाना सही होगा कि एक ऐसे उम्मीदवार के मामले में जो

सदस्य के रूप में विजयी होने के लिए संवैधानिक रूप से असमर्थ है, चुनाव के आयोजन में संविधान के प्रावधानों का गैर-अनुपालन हुआ है और इस प्रकार अधिनियम की धारा 100 की उप-धारा (2)(सी) लागू होती है।"

वृंदाबन नायक के मामले एआईआर (1965) एससी 1892 में, इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न संविधान के अनुच्छेद 192 का निर्वचन था। अपीलकर्ता उड़ीसा की विधान सभा के लिए निर्वाचित हुआ था और उसे राज्य के मंत्रिपरिषद में एक मंत्री के रूप में नियुक्त किया गया था। उत्तरदाता संख्या 2 पी. बिसवाल ने राज्यपाल के समक्ष आवेदन देकर आरोप लगाया कि अपीलकर्ता ने अपने चुनाव के बाद अधिनियम की धारा 7 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 191(1)(ई) के तहत अयोग्यता प्राप्त कर ली है। राज्य के राज्यपाल के निर्देशों के तहत मुख्य सचिव ने उक्त शिकायत को भारत के चुनाव आयोग को उसकी राय के लिए अग्रेषित कर दिया। अपीलकर्ता ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत पंजाब उच्च न्यायालय का रुख किया और प्रार्थना की कि चुनाव आयोग द्वारा की जाने वाली जाँच को इस आधार पर खंडित किया जाए कि यह अक्षम और क्षेत्राधिकार के बिना थी। उच्च न्यायालय ने संक्षिप्त रूप से रिट याचिका खारिज कर दी। इस न्यायालय ने अपीलकर्ता को अपील करने की विशेष अनुमति प्रदान की। इसमें कोई संदेह नहीं था कि राज्यपाल के समक्ष अपनी शिकायत में उत्तरदाता संख्या 2 द्वारा लगाए गए आरोपों ने *प्रथम दृष्ट्या* यह संकेत दिया था कि जिस अयोग्यता पर उसने भरोसा किया था वह अपीलकर्ता के चुनाव के बाद उत्पन्न हुई थी। संविधान के अनुच्छेद 192 के खंड (1) की जांच करने के बाद इस न्यायालय ने टिप्पणी की कि उक्त खंड के लिए जो आवश्यक था वह यह था कि एक प्रश्न उत्पन्न होना चाहिए और यह कैसे उत्पन्न होता है या किसके द्वारा उठाया जाता है या किस परिस्थिति में उठाया जाता है, खंड के लागू होने के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक नहीं हैं।

केवल इतना प्रासंगिक है कि खंड द्वारा उल्लिखित इस प्रकार का एक प्रश्न उत्पन्न होना चाहिए। तब इस न्यायालय ने कहा :-

"फिर जहाँ तक "प्रश्न राज्यपाल के निर्णय के लिए भेजा जाएगा" शब्दों पर आधारित तर्क का संबंध है, इन शब्दों का यह अर्थ नहीं है कि किसी अन्य प्राधिकारी को शिकायत प्राप्त करनी है और शिकायत के बारे में *प्रथम दृष्टया* और प्रारंभिक जांच के बाद, इसे राज्यपाल को उनके निर्णय के लिए भेजना या संदर्भित करना है। ये शब्द केवल इस बात पर जोर देते हैं कि अनुच्छेद 192 के खंड (1) द्वारा परिकल्पित प्रकार के किसी भी प्रश्न का निर्णय राज्यपाल और केवल राज्यपाल द्वारा ही किया जाएगा; कोई अन्य प्राधिकारी इसका निर्णय नहीं कर सकता, और न ही उक्त प्रश्न का निर्णय इस रूप में न्यायालयों के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आ सकता है। "राज्यपाल के निर्णय के लिए भेजा जाएगा" शब्दों का यही महत्व है। यदि आशय यह होता कि प्रश्न पहले विधान सभा में उठाया जाना चाहिए और अध्यक्ष द्वारा *प्रथम दृष्टया* जांच के बाद उनके द्वारा राज्यपाल को संदर्भित किया जाना चाहिए, तो अनुच्छेद 192(1) को पूरी तरह से अलग तरीके से तैयार किया गया होता। हम नहीं सोचते कि केवल विवक्षा द्वारा अनुच्छेद 192(1) में ऐसी गंभीर सीमाएँ पढ़ने का कोई औचित्य है।"

अंत में इस न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 192(1) और (2) की योजना बिल्कुल स्पष्ट है। अनुच्छेद 192(1) के तहत उठाए गए प्रश्न पर निर्णय निस्संदेह राज्यपाल द्वारा सुनाया जाना है, लेकिन वह निर्णय चुनाव आयोग के प्रावधानों के अनुसार होना चाहिए। इस न्यायालय ने अपील को खारिज कर दिया।

मोहिंदर सिंह गिल के मामले एआईआर (1978) एससी 851 में, चुनाव आयुक्त ने पूरे मतदान को रद्द करने के बाद नए सिरे से मतदान का आदेश दिया था क्योंकि वहाँ गड़बड़ियाँ

हुई थीं, जिसके तहत मतपत्रों को नष्ट कर दिया गया था और निर्वाचन क्षेत्र के एक हिस्से से मत दस्तावेजों को भी ले जाया गया था। मतदान लगभग अंतिम चरणों तक निर्धारित अनुसार आगे बढ़ा, लेकिन तीसरे उत्तरदाता के इशारे पर जुटाई गई कथित भीड़ की हिंसा के कारण मतगणना को पूरा होने से रोक दिया गया, जिसके बारे में अपीलकर्ता ने कहा कि वह हार रहा था और अपीलकर्ता स्वयं लगभग 2000 मतों के अंतर से जीत रहा था। इस न्यायालय के समक्ष उठाए गए प्रश्नों में से एक यह था: "क्या अनुच्छेद 329(बी) दो अस्थायी सीमाओं अर्थात् राष्ट्रपति द्वारा चुनाव के लिए बुलाई गई अधिसूचना और निर्वाचन अधिकारी द्वारा परिणाम की घोषणा के बीच उत्पन्न होने वाले, चुनाव के अंतिम परिणाम पर प्रभाव डालने वाले सभी प्रकार के प्रश्नों पर एक व्यापक रोक है? क्या अनुच्छेद 226 भी इस प्रतिबंध के अंतर्गत आता है और, यदि हाँ, तो क्या धारा 100 हर प्रकार की आपत्ति, संवैधानिक, कानूनी या तथ्यात्मक, को समाहित करने के लिए पर्याप्त व्यापक है, जिसके परिणामस्वरूप किसी चुनाव को अमान्य घोषित किया जा सकता है और याचिकाकर्ता को विजयी उम्मीदवार घोषित किया जा सकता है और पूर्ण राहत देने के लिए आवश्यक किसी भी कदम के आयोजन का निर्देश दिया जा सकता है?"

इस न्यायालय ने पोन्नुस्वामी, एआईआर (1952) एससी 64 के मामले में अपने पुराने निर्णय पर विचार किया। संविधान के अनुच्छेद 329(बी) का विश्लेषण करते हुए इस न्यायालय ने कहा कि व्यथित पक्ष के लिए एकमात्र उपाय, यदि वह किसी चुनाव को चुनौती देना चाहता है, एक चुनाव याचिका है। और अन्य सभी उपायों का यह बहिष्करण 'इसके बावजूद' खंड के कारण अनुच्छेद 226 जैसे संवैधानिक उपायों को भी शामिल करता है। यदि जिस पर सवाल उठाया गया है वह एक चुनाव है, तो रोक काम करती है बशर्ते कि कार्यवाही 'उस पर सवाल उठाती है' या उसे विवाद का विषय बनाती है, अन्यथा नहीं। इस निषेध को प्रेरित करने वाली उच्च नीति क्या है? क्या कोई ऐसा निर्वचनीय विकल्प है जो अपूरणीय क्षति को रोकेगा और

बीच में कानूनी विवादों की अनुमति देगा? अधिनियम की धारा 100(1)(डी)(iv) इस योजना में कैसे एकीकृत होती है? न्यायालय ने धारा 100(1)(डी)(iv) और अधिनियम की धारा 98 के प्रावधानों का संदर्भ दिया। न्यायालय ने तब माना :-

"30. अनुच्छेद 329(बी) की पूर्ण रोक दो सिद्धांतों पर आधारित है: (1) प्रारंभ और समापन के बीच के कदमों और चरणों को चुनौती देने वाली कानूनी कार्यवाहियों के माध्यम से बिना किसी मध्यवर्ती व्यवधान के पूरी चुनाव प्रक्रिया को शीघ्रता से संपन्न कराने की अनिवार्य तात्कालिकता। (2) एक विशेष क्षेत्राधिकार का प्रावधान जिसे चुनाव के अंत में एक व्यथित पक्ष द्वारा आह्वान किया जा सकता है, अन्य प्रारूपों को अपवर्जित करता है, क्योंकि अधिकार और उपाय संविधि की रचना हैं और संविधान द्वारा नियंत्रित हैं। *दुर्गा शंकर मेहता*, [1955] 1 एससीआर 267; एआईआर (1954) एससी 520 ने इस स्थिति की पुष्टि की है और इसे यह जोड़कर पूरक किया है कि, एक बार चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा निर्णय ले लिए जाने के बाद, निषेध समाप्त हो जाता है और अनुच्छेद 136 के तहत हस्तक्षेप करने की सर्वोच्च न्यायालय की समग्र शक्ति सक्रिय हो जाती है। *हरि मेहता*, [1955] 1 एससीआर 1104; एआईआर (1955) एससी 233 में, इस न्यायालय ने *पोन्नुस्वामी*, एआईआर (1952) एससी 64 के नियम को बरकरार रखा, जो अधिसूचना से लेकर घोषणा तक के व्यापक अर्थ में समझे जाने वाले चुनाव की चल रही प्रक्रिया के दौरान, अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही सहित किसी भी कार्यवाही को अपवर्जित करता है। घोषणा के आगे चुनाव याचिका आती है, लेकिन न्यायाधिकरण के निर्णय के आगे अनुच्छेद 329(बी) की रोक बाध्य नहीं करती है।

31. यदि 'चुनाव' व्यापक अर्थ रखता है, यदि 'सवाल उठाने' में सामान्य अंग्रेजी में एक अर्थ संबंधी व्यापकता है, यदि नीति और सिद्धांत संविधियों के निर्वचन के लिए उपकरण

हैं, भाषा इसकी अनुमति देती है, तो निष्कर्ष अपरिहार्य है, भले ही विपरीत तर्क का भावनात्मक प्रभाव और चतुर आकर्षण हो सकता है, कि अनुच्छेद 226 के तहत सब कुछ समाहित करने वाला क्षेत्राधिकार नए सिरे से मतदान के साथ एकीकृत रद्दीकरण के निर्देश की शुद्धता, वैधता या अन्यथा पर विचार नहीं कर सकता है। क्योंकि, ऐसे नए मतदान का *प्रथम दृष्ट्या* उद्देश्य एक विस्तृत मतदान प्रक्रिया को बहाल करना और नए मतदान के सुधारात्मक प्रयास के माध्यम से इसे पूरा करना था। चाहे, तथ्य या कानून में, आदेश उसकी शक्तियों के भीतर वैध रूप से दिया गया है या प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन करता है, इसकी जांच बाद में नियुक्त तंत्र, अर्थात् चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा की जा सकती है। उस पहलू को अभी स्पष्ट किया जाएगा। हम इस आधार पर आगे बढ़ते हैं कि एक मतदान केंद्र में या कई मतदान केंद्रों में, अच्छे कारणों से, नया मतदान वैध है। यह दर्शाता है कि कई या सभी हिस्सों में, व्यापक या पृथक रूप से नया मतदान वैध हो सकता है। हम इस पर विचार नहीं कर रहे हैं कि क्या यह कार्य अन्य कारणों से खराब था। हमारा संबंध केवल यह कहने से है कि यदि नियमित मतदान, कुछ कारणों से बहुलता द्वारा विजयी उम्मीदवार को चुनने के लक्ष्य तक पहुँचने में विफल रहा है और इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक नए मतदान (नए चुनाव नहीं) की आवश्यकता है, तो यह अभी भी चुनाव में एक कदम हो सकता है। डंकिक की मुक्ति जवाबी हमले की रणनीति का हिस्सा है। बुद्धिमत्तापूर्ण या वैध, एक अलग बात है।

32. इस धारणा पर, लेकिन चुनाव न्यायाधिकरण द्वारा निर्धारण के लिए नए मतदान के निर्देश की वैधता के प्रश्न को खुला छोड़ते हुए, हम मानते हैं कि नए मतदान के साथ जुड़े रद्दीकरण को चुनौती देने वाली एक रिट याचिका 'चुनाव' में एक कदम पर सवाल उठाने के समान है और इसलिए, अनुच्छेद 329(बी) द्वारा वर्जित है। यदि कोई नया मतदान

निर्देशित नहीं किया गया होता तो कानूनी परिप्रेक्ष्य बहुत अलग होता। तब केवल रद्दीकरण ने चुनाव के क्रम को विफल कर दिया होता और अलग-अलग विचार सामने आते। हमें एक काल्पनिक मामले का पीछा करने की आवश्यकता नहीं है।"

कृष्ण वल्लभ प्रसाद सिंह के मामले, एआईआर (1985) एससी 1746 में, इस न्यायालय ने चुनाव नियम, 1961 के नियम 64 के तहत प्रपत्र 21सी या 21डी जारी नहीं किए जाने के संबंध में एक चुनाव मामले में संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के संदर्भ में निम्नानुसार टिप्पणी की:-

"यह स्पष्ट है कि कानून द्वारा परिकल्पित यह घोषणा कि एक उम्मीदवार निर्वाचित हो गया है, प्रपत्र 21सी या प्रपत्र 21डी में घोषणा है। प्रपत्र 21सी में घोषणा एक आम चुनाव में की जाती है और प्रपत्र 21डी में घोषणा तब की जाती है जब चुनाव एक आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए आयोजित किया जाता है। अब यह स्थापित कानून है कि मतदान करने का अधिकार, चुनाव के लिए उम्मीदवार के रूप में खड़े होने का अधिकार और उसके संबंध में पूरी प्रक्रिया संविधि द्वारा बनाई और निर्धारित की जाती है। तदनुसार, जब लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 66 यह प्रावधान करती है कि चुनाव का परिणाम अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों द्वारा प्रदान की गई रीति से घोषित किया जाएगा, तो घोषणा केवल उसी रीति से प्रभावी की जा सकती है। वह रीति चुनाव नियम, 1961 के नियम 64 में स्पष्ट रूप से व्यक्त की गई है। कोई अन्य रीति नहीं है। प्रपत्र 21सी या प्रपत्र 21डी में एक घोषणा होनी ही चाहिए। निर्वाचन अधिकारी द्वारा यह घोषणा कि याचिकाकर्ता निर्वाचित हो गया था, का कोई कानूनी दर्जा नहीं है क्योंकि प्रपत्र 21सी में घोषणा अभी तक तैयार नहीं की गई थी। यहाँ तक कि याचिकाकर्ता को प्रपत्र 22 में चुनाव का प्रमाण पत्र प्रदान किया जाना भी उसके काम

नहीं आ सकता क्योंकि नियम 66 धारा 66 के तहत उम्मीदवार को निर्वाचित घोषित किए जाने के बाद ही ऐसा प्रमाण पत्र देने की परिकल्पना करता है, जो हमें वापस नियम 64 और इसलिए प्रपत्र 21सी पर ले जाता है। प्रासंगिक समय पर प्रपत्र 21सी में कोई घोषणा न होने के कारण, याचिकाकर्ता को प्रपत्र 22 में चुनाव का प्रमाण पत्र दिया जाना अर्थहीन था।

हमारी राय है कि चुनाव की प्रक्रिया प्रपत्र 21सी में घोषणा किए जाने और परिणामी औपचारिकताओं के पूरा होने के बाद ही समाप्त हुई। संविधान के अनुच्छेद 329 के खंड (बी) की रोक उसके बाद ही लागू हुई और केवल एक चुनाव याचिका ही पोषणीय थी। रिट याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता है।"

इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया बनाम शिवाजी और अन्य, एआईआर (1988) एससी 61 में, इस न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 329(बी) के मुकाबले अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर फिर से विचार करने का अवसर मिला। इसने *पोन्नुस्वामी* मामले [1952] एससीआर 218 और *मोहिंदर सिंह गिल* मामले [1978] 2 एससीआर 272 में अपने पुराने निर्णयों का भी संदर्भ दिया।

इन सभी मामलों में एक साझा संदेश है कि जब संसद या विधान सभा के चुनाव के लिए मतदान या नए मतदान की प्रक्रिया चल रही हो, तो उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता है और व्यथित पक्षों का उपाय संविधान के अनुच्छेद 329(बी) के साथ पठित अधिनियम के तहत है। अधिनियम धारा 81 के तहत अधिनियम की धारा 100 और 101 की उप-धारा (1) में निर्दिष्ट एक या अधिक आधारों पर चुनाव याचिका दायर करके चुनाव को चुनौती देने का प्रावधान करता है। इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता कि अपीलकर्ता के नामांकन की अनुचित स्वीकृति के आधार पर चुनाव याचिका दायर

करके उसके चुनाव को चुनौती दी जा सकती थी क्योंकि अपीलकर्ता लालगुडी विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची में मतदाता नहीं था और इस मामले में संविधान या अधिनियम के प्रावधानों के किसी भी गैर-अनुपालन द्वारा भी चुनौती दी जा सकती थी। यदि अधिनियम की धारा 81 के तहत चुनाव याचिका दायर की गई होती, तो उच्च न्यायालय निश्चित रूप से अपीलकर्ता के चुनाव को शून्य घोषित कर देता। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया था कि उत्तरदाता अधिनियम की धारा 81 और 100 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 329(बी) के मद्देनजर संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का आह्वान नहीं कर सकता था और अपीलकर्ता के चुनाव को चुनौती देने के लिए केवल एक चुनाव याचिका ही पोषणीय थी। वह अधिकार उत्तरदाता के पास अपीलकर्ता के चुनाव को चुनौती देने के लिए निश्चित रूप से था। अधिनियम की धारा 81 के तहत चुनाव याचिका विजयी उम्मीदवार, यानी वर्तमान मामले में अपीलकर्ता, के चुनाव की दिनांक से पैंतालीस दिनों के भीतर दायर की जानी थी। ऐसा नहीं किया गया था। अधिनियम के तहत ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि अधिनियम की धारा 81 के तहत निर्धारित सीमा की अवधि के बाद चुनाव याचिका दायर की जा सकती है। ऐसा होने पर यह प्रश्न उठता है कि क्या उत्तरदाता बिना किसी उपाय के हैं, विशेष रूप से तब जब यह स्थापित हो चुका है कि अपीलकर्ता के पास लालगुडी विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से तमिलनाडु विधान सभा के लिए चुने जाने की योग्यता नहीं थी।

प्रथम उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता श्री बालकृष्णमूर्ति ने तर्क दिया कि ऐसी परिस्थितियों में जहाँ अपीलकर्ता के पास चुने जाने के लिए संविधान द्वारा आवश्यक बुनियादी और मौलिक योग्यता का अभाव था, यह नहीं कहा जा सकता था कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत एक याचिका पोषणीय नहीं थी। यहाँ अपीलकर्ता के चुनाव की घोषणा के बाद अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने की मांग की गई है। उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 193 का

संदर्भ दिया जो तब बैठने और मतदान करने के लिए जुर्माना प्रदान करता है जब कोई व्यक्ति विधान सभा का सदस्य होने के योग्य नहीं होता है।

उनके प्रस्तुतीकरण के समर्थन में इस न्यायालय के *इलेक्शन कमीशन, इंडिया बनाम साका वेंकट राव*, एआईआर (1953) एससी 210 के निर्णय का संदर्भ दिया गया था। इस मामले में उत्तरदाता को वर्ष 1942 में दोषी ठहराया गया था और सात वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी। उन्हें 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता दिवस मनाने के अवसर पर रिहा किया गया था। जून, 1952 में मद्रास विधान सभा में काकीनाडा निर्वाचन क्षेत्र में एक आरक्षित सीट के लिए उप-चुनाव होना था और उत्तरदाता, स्वयं को एक उम्मीदवार के रूप में प्रस्तुत करने की इच्छा रखते हुए, लेकिन अधिनियम के तहत खुद को अयोग्य पाते हुए, क्योंकि उनकी रिहाई से पांच वर्ष नहीं बीते थे, उन्होंने चुनाव लड़ने में सक्षम होने के लिए छूट के लिए 2 अप्रैल, 1952 को चुनाव आयोग में आवेदन किया। उत्तरदाता को नामांकन दाखिल करने की अंतिम दिनांक 5 मई, 1952 तक कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। उन्होंने उसी दिन अपना नामांकन दाखिल कर दिया। इस पर न तो निर्वाचन अधिकारी और न ही किसी अन्य उम्मीदवार द्वारा कोई आपत्ति जताई गई। चुनाव 14 जून, 1952 को आयोजित किया गया था और उत्तरदाता को 16 जून, 1952 को निर्वाचित घोषित किया गया था तथा चुनाव का परिणाम विधिवत 19 जून, 1952 को राजपत्र में प्रकाशित किया गया था। इसके बाद उत्तरदाता ने 27 जून, 1952 को विधान सभा के सदस्य के रूप में अपना स्थान ग्रहण किया। इस बीच चुनाव आयोग ने छूट के लिए उत्तरदाता के आवेदन को खारिज कर दिया और दिनांक 13 मई, 1952 के अपने पत्र द्वारा उत्तरदाता को इस अस्वीकृति की सूचना दी, जिसके बारे में आरोप है कि यह उन्हें प्राप्त नहीं हुआ था। विधान सभा के अध्यक्ष ने 3 जुलाई, 1952 को चुनाव आयोग के उक्त संचार को उत्तरदाता के ध्यान में लाया। चूंकि उत्तरदाता की अयोग्यता के संबंध में एक प्रश्न उठा, इसलिए अध्यक्ष ने मामले को मद्रास के

राज्यपाल को संदर्भित कर दिया, जिन्होंने बदले में संविधान के अनुच्छेद 192 के तहत आवश्यक रूप से मामले को उसकी राय के लिए चुनाव आयोग को अग्रेषित कर दिया। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय में उत्तरदाता द्वारा दायर रिट याचिका में, चुनाव आयोग द्वारा किए गए प्रस्तुतीकरणों में से एक यह था कि अनुच्छेद 192, इसके सही अर्थों में, अयोग्यता के उन मामलों पर लागू होता था जो चुनाव से पहले और बाद में दोनों समय उत्पन्न हुए थे और उत्तरदाता की अयोग्यता के प्रश्न का मद्रास के राज्यपाल को संदर्भ और उत्तरार्द्ध का उसकी राय के लिए चुनाव आयोग को संदर्भ सक्षम और वैध थे। इस न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 190(3), 191, 192 और 193 का संदर्भ दिया और निम्नानुसार टिप्पणी की :-

"अनुच्छेद 191, जो चुनाव के साथ-साथ सदस्य के रूप में बने रहने के लिए अयोग्यता का समान सेट निर्धारित करता है, और अनुच्छेद 193 जो अयोग्य होने पर बैठने और मतदान करने के लिए जुर्माना निर्धारित करता है, स्वाभाविक रूप से पहले से मौजूद और बाद की दोनों अयोग्यताओं को शामिल करने के लिए पर्याप्त व्यापक शब्दों में व्यक्त किए गए हैं; लेकिन यह आवश्यक रूप से पालन नहीं करता है कि अनुच्छेद 190(3) और 192(1) को भी दोनों को शामिल करने वाला माना जाना चाहिए। उनका अर्थ प्रयुक्त भाषा पर निर्भर होना चाहिए, जो हम सोचते हैं कि काफी स्पष्ट है। हमारी राय में ये दो अनुच्छेद एक साथ चलते हैं और तब उपाय प्रदान करते हैं जब कोई सदस्य सदस्य के रूप में चुने जाने के बाद अयोग्यता का भागी होता है। न केवल अनुच्छेद 190(3) में "अधीन हो जाता है" और अनुच्छेद 192(1) में "अधीन हो गया है" शब्द निर्वाचित होने के बाद सदस्य की स्थिति में बदलाव का संकेत देते हैं, बल्कि यह प्रावधान कि उसका स्थान तदनुसार रिक्त होना है, यानी वह स्थान जिसे सदस्य भर रहा था, इसलिए उसके अयोग्य होने पर रिक्त हो जाता है, इस दृष्टिकोण को और मजबूत

करता है कि अनुच्छेद केवल एक आसीन सदस्य के इस तरह बैठने के दौरान अक्षमता का भागी होने की परिकल्पना करता है। यह सुझाव कि अनुच्छेद 190(3) में प्रयुक्त भाषा को पहले से मौजूद अयोग्यता पर भी समान रूप से लागू किया जा सकता है क्योंकि एक सदस्य को निर्वाचित होने के क्षण ही अपना स्थान रिक्त करने वाला माना जा सकता है, एक तनावपूर्ण और दूर की कौड़ी का निर्वचन है और इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। महान्यायवादी ने स्वीकार किया कि यदि "अधीन हो जाता है" या "अधीन हो गया है" के स्थान पर "है" शब्द प्रतिस्थापित किया जाता, तो यह उनके द्वारा दिए जा रहे अर्थ को अधिक उपयुक्त रूप से व्यक्त करता, लेकिन वे यह बताने में असमर्थ थे कि इसका उपयोग क्यों नहीं किया गया था।"

अंत में, इस न्यायालय ने कहा कि अनुच्छेद 190(3) और 192(1) केवल उन अयोग्यताओं पर लागू होते हैं जिनके अधीन कोई सदस्य इस रूप में निर्वाचित होने के बाद होता है, और न तो राज्यपाल और न ही चुनाव आयोग के पास उत्तरदाता की अयोग्यता की जाँच करने का क्षेत्राधिकार है जो उसके चुनाव से बहुत पहले उत्पन्न हुई थी।

यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस मामले में महान्यायवादी द्वारा एक तर्क दिया गया था कि अनुच्छेद 190 से 193 को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए और अनुच्छेद 190(3) तथा अनुच्छेद 192(1) अपने दायरे में पहले से मौजूद अयोग्यताओं को भी शामिल करेंगे। इस तर्क को इस न्यायालय द्वारा तब खारिज कर दिया गया था जब उसने कहा था :-

"महान्यायवादी ने तर्क दिया कि "सदस्यों की अयोग्यताओं" से निपटने वाले प्रावधानों के पूरे समूह, अर्थात् अनुच्छेद 190 से 193 को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए, और चूंकि अनुच्छेद 191 और 193 स्पष्ट रूप से पहले से मौजूद और बाद की दोनों अयोग्यताओं को शामिल करते हैं, इसलिए अनुच्छेद 190 और 192 को भी इसी तरह

दोनों प्रकार की अयोग्यता से संबंधित समझा जाना चाहिए। उनके अनुसार ये सभी प्रावधान मिलकर एक एकीकृत योजना का निर्माण करते हैं जिसके द्वारा अयोग्यताएं निर्धारित की जाती हैं और उनके संबंध में उत्पन्न होने वाले प्रश्नों के निर्धारण के लिए तंत्र भी प्रदान किया जाता है। संदर्भ में, अनुच्छेद 190(3) और 192(1) में "अधीन होना" शब्द का प्रयोग, अपने दायरे में पहले से मौजूद अयोग्यताओं को शामिल करने के लिए अनुपयुक्त नहीं है, क्योंकि अयोग्यता के अधीन होना "विधानमंडल के एक सदस्य के सदस्य" के बारे में प्रतिपादित किया गया है, और एक व्यक्ति, जो पहले से ही अयोग्य होने के कारण निर्वाचित हो जाता है, उसके बारे में निर्वाचित होते ही सदस्य के रूप में अयोग्यता के "अधीन होना" कहना अनुपयुक्त नहीं है। तर्क ध्वनि से अधिक चतुर है।" इस न्यायालय ने आगे यह भी जोड़ा :-

"यह कहा गया था कि इस दृष्टिकोण पर कि अनुच्छेद 190(3) और 192(1) एक सदस्य के रूप में चुनाव के बाद हुई अयोग्यता से निपटते हैं, ऐसे सदस्य को हटाने का कोई तरीका नहीं होगा जो अपने नामांकन के बाद और अपने चुनाव से पहले अयोग्यता के अधीन हो गया हो, क्योंकि ऐसी अयोग्यता लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 100 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 329 के तहत चुनाव याचिका द्वारा चुनाव को चुनौती देने का कोई आधार नहीं है। यदि यह एक विसंगति है, तो यह उत्तरार्द्ध अधिनियम में एक कमी के कारण उत्पन्न होती है जो आसानी से ऐसी आकस्मिकता के लिए प्रावधान कर सकती थी, और इसे संवैधानिक प्रावधानों के उत्तरदाता के अर्थ के खिलाफ एक तर्क के रूप में दबाया नहीं जा सकता है। दूसरी ओर, महान्यायवादी के तर्क को, यदि स्वीकार कर लिया जाता है, तो अनुच्छेद 192 के तहत एक संदर्भ से निपटने वाले राज्यपाल द्वारा और ऊपर संदर्भित संसदीय कानून की धारा 100 के तहत एक

चुनाव याचिका की जांच करने वाले चुनाव न्यायाधिकरण (अब उच्च न्यायालय) द्वारा परस्पर विरोधी निर्णय दिए जा सकते हैं।"

इस निर्णय से यह स्पष्ट है कि इस न्यायालय ने माना कि अनुच्छेद 191, जो चुनाव के साथ-साथ सदस्य के रूप में बने रहने के लिए अयोग्यता का समान सेट निर्धारित करता है, और अनुच्छेद 193 जो अयोग्य होने पर बैठने और मतदान करने के लिए जुर्माना निर्धारित करता है, स्वाभाविक रूप से पहले से मौजूद और बाद की दोनों योग्यताओं को शामिल करने के लिए पर्याप्त व्यापक शब्दों में व्यक्त किए गए हैं। लेकिन इसने यह भी माना कि यह आवश्यक रूप से पालन नहीं करता है कि अनुच्छेद 190(3) और 192(1) को भी दोनों को शामिल करने वाला माना जाना चाहिए। इसलिए, इसने माना कि अनुच्छेद 190(3) और 192(1) एक साथ चलते हैं और तब उपाय प्रदान करते हैं जब कोई सदस्य सदस्य के रूप में चुने जाने के बाद अयोग्यता का भागी होता है। यह न्यायालय इस मुद्दे की जांच कर रहा था कि क्या अनुच्छेद 192 के तहत कार्रवाई की जा सकती है जब उत्तरदाता वेंकट राव मद्रास विधान सभा के लिए चुने जाने के लिए अपने नामांकन से पहले ही अयोग्यता के भागी हो चुके थे और दोषसिद्धि से उनकी रिहाई के बाद नामांकन दाखिल करने के लिए उनके लिए निर्धारित समय अभी समाप्त नहीं हुआ था। इसलिए, इस न्यायालय ने माना कि वेंकट राव के खिलाफ अनुच्छेद 192 के तहत कार्रवाई नहीं की जा सकती थी।

वर्तमान मामले में अपीलकर्ता लालगुडी विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र की मतदाता सूची में मतदाता नहीं था। इसलिए, वह उस निर्वाचन क्षेत्र से सदस्य के रूप में निर्वाचित नहीं हो सकता था। कोई व्यक्ति जो उस निर्वाचन क्षेत्र से मतदाता नहीं है, वह उस निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व कैसे कर सकता है? उसके पास अधिनियम की धारा 5 के साथ पठित संविधान के अनुच्छेद 173 के खंड (सी) के तहत बुनियादी योग्यता का अभाव था, जिसमें यह अनिवार्य

किया गया था कि विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से चुने जाने वाले व्यक्ति को उस निर्वाचन क्षेत्र का मतदाता होना चाहिए। वर्तमान मामले में अपीलकर्ता निश्चित रूप से तमिलनाडु की विधान सभा का सदस्य होने के लिए अयोग्य है। हालाँकि, अधिनियम की धारा 81 के तहत चुनाव याचिका दायर करके उनके चुनाव को चुनौती नहीं दी गई थी। अपीलकर्ता जानता है कि वह अयोग्य है। फिर भी वह विधान सभा के सदस्य के रूप में बैठता है और मतदान करता है। वह प्रत्येक दिन के संबंध में पांच सौ रुपये के जुर्माने का भागी है जिस दिन वह इस तरह बैठता या मतदान करता है और वह जुर्माना राज्य को देय ऋण के रूप में वसूल किया जा सकता है। अधिनियम के तहत कोई न्यायनिर्णयन नहीं हुआ है और संविधान का कोई अन्य प्रावधान नहीं है कि अपीलकर्ता द्वारा इस प्रकार लगाया गया जुर्माना राज्य को देय ऋण के रूप में कैसे वसूल किया जाना है। अपीलकर्ता फिर भी जुर्माने का भागी है क्योंकि वह जानता है कि वह विधान सभा की सदस्यता के लिए योग्य नहीं है और फिर भी वह कानून के विपरीत कार्य करता है।

विचार के लिए जो प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या ऐसी परिस्थितियों में उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग यह घोषित करने में नहीं कर सकता कि अपीलकर्ता लालगुडी विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से तमिलनाडु विधान सभा का सदस्य होने के योग्य नहीं है। उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष पर यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता ने अपने नामांकन प्रपत्र में 'वेंकटचलम पिता पेथु' के रूप में जाने जाने वाले व्यक्ति का प्रतिरूपण किया, इस तथ्य का लाभ उठाते हुए कि उस व्यक्ति का पहला नाम उसके नाम जैसा ही है। अपीलकर्ता आपराधिक रूप से भी उत्तरदायी होगा क्योंकि उसने अपना प्रतिरूपण करते हुए शपथ पत्र पर अपना नामांकन दाखिल किया था। यदि ऐसी परिस्थितियों में उसे विधान सभा में बैठना और मतदान करना जारी रखने की अनुमति दी जाती है, तो उसका कृत्य संविधान के साथ धोखाधड़ी होगा।

इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया बनाम साका वेंकट राव, एआईआर (1953) एससी 210 के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के मद्देनजर यह हो सकता है कि अनुच्छेद 192 के तहत कार्रवाई नहीं की जा सकती थी क्योंकि अपीलकर्ता ने जो अयोग्यता प्राप्त की थी वह उसके चुनाव से पहले की थी। इस न्यायालय के विभिन्न निर्णय, जिन्हें अपीलकर्ता द्वारा संदर्भित किया गया है कि एक विजयी उम्मीदवार के चुनाव को चुनौती देने के लिए उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार अनुच्छेद 226 के तहत वर्जित है और जिन्हें हमने ऊपर नोट किया है, अब हमारे समक्ष अपीलकर्ता के मामले में लागू होते प्रतीत नहीं होते हैं। संविधान का अनुच्छेद 226 यथासंभव व्यापक शब्दों में व्यक्त किया गया है और जब तक उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर कोई स्पष्ट रोक न हो, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उसकी शक्तियों का प्रयोग तब किया जा सकता है जब कोई ऐसा कार्य हो जो कानून के किसी प्रावधान के विरुद्ध हो या संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करता हो और जब उचित राहत के लिए अधिनियम के प्रावधानों का सहारा न लिया जा सके। वर्तमान जैसी परिस्थितियों में अनुच्छेद 329(बी) की रोक तब लागू नहीं होगी जब मामला अनुच्छेद 191 और 193 के अंतर्गत आता है और चुनाव की पूरी प्रक्रिया समाप्त हो चुकी होती है। उस मामले पर विचार करें जहाँ निर्वाचित व्यक्ति भारत का नागरिक नहीं है। क्या न्यायालय किसी विदेशी नागरिक को विधान सभा में बैठने और मतदान करने की अनुमति देगा और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करेगा?

इसलिए, हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका पर विचार करने में अपने क्षेत्राधिकार का सही ढंग से प्रयोग किया और घोषणा की कि अपीलकर्ता तमिलनाडु विधान सभा में बैठने का हकदार नहीं था और परिणामस्वरूप उसे विधान सभा के सदस्य के रूप में कार्य करने से रोकने का आदेश दिया। इसका शुद्ध प्रभाव यह है कि अपीलकर्ता तमिलनाडु विधान सभा का सदस्य नहीं रह जाता है। विधान सभा की अवधि

बहुत पहले समाप्त हो चुकी है। अन्यथा हम उत्तरदाता संख्या 2 को, जो तमिलनाडु विधान सभा के सचिव हैं, चुनाव आयोग को यह सूचित करने का निर्देश देते कि लालगुडी विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र की सीट खाली हो गई है और चुनाव आयोग उस विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से नए चुनाव कराने के लिए आवश्यक कदम उठाए। आम तौर पर इस तरह के मामले में चुनाव आयोग को अनिवार्य रूप से एक पक्ष बनाया जाना चाहिए।

जब इस न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता को अपील करने की अनुमति दी गई थी तो आक्षेपित निर्णय के संचालन को निलंबित कर दिया गया था। उत्तरदाता संख्या 2 राज्य सरकार को सूचित करेगा कि अपीलकर्ता विधान सभा के सदस्य के रूप में कितने दिन बैठा और राज्य सरकार के लिए यह होगा कि वह संविधान के अनुच्छेद 193 के संदर्भ में अपीलकर्ता से जुर्माना वसूल करे।

यह अपील व्यय सहित खारिज की जाती है।

एस.वी.के.आई.

अपील खारिज।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।